जब स्वतंत्रता है तब ज़िम्मेदारी का अर्थ काफी अलग है। ज़िम्मेदारी स्वतंत्रता को नकारती नहीं है—वे एक साथ चलते हैं। जब स्वतंत्रता की मौलिक गहरी सच्चाई मौजूद है, तब ज़िम्मेदारी का सरोकार पूरे जीवन के साथ होता है, न कि जीवन के एक हिस्से के साथ।

जे. कृष्णमूर्ति

जे. कृष्णमूर्ति परिसंवाद

मार्च २०११

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, वाराणसी की त्रैमासिक हिंदी पत्रिका
सितंबर, दिसंबर, मार्च एवं जून में प्रकाशित

वार्षिक शुल्क : रु. १००.००
दो वर्ष : रु. १७५.००
पांच वर्ष के लिए : रु. ४००.००
आजीवन : रु. १०००.००

संपादक : विजय छाबड़ा

इस अंक में :

	पृष्ठ संख्या
सादगी	४
ज़िम्मेदारी और आज़ादी के बीच रिश्ता	६
स्वतंत्रता से जुड़े प्रश्न	१०
स्वतंत्रता और व्यवस्था	१२
युद्ध हमारे हर रोज़ के जीवन का नतीजा है	१५
द्विभाषी उद्धरण	बीच के पन्ने
ऐक्शन, विचार और टकराव	२०

खंड दो
सूचना २६

अनुवाद : भूमिका चावला, बलराम

संपादकीय

हम चाहे जो भी कर रहे हों, चाहे जहां हों, हमारा खुद से, अपने आस-पास से क्या नाता है? क्या हम वाकई अपने काम, ज़िंदगी और संबंधों के प्रति संवेदनशील हैं या बस यूं ही समय बिता रहे हैं? आखिर हमें चाहिए क्या ज़िंदगी जीने के लिए : आज़ादी, प्रेम, आपसी रिश्तों की समझ, या फिर अभी हमने यह सब सोचा ही नहीं है?

हम यह निर्णय कैसे करेंगे कि क्या ज़रूरी है और क्या गैरज़रूरी? अगर चयन विपरीतों का खेल है तो उसका आज़ादी से, मुक्ति से क्या संबंध है? चयन के शिकंजे में फंसा मन क्या आज़ादी और ज़िम्मेदारी के अटूट रिश्ते को समझ सकता है? क्या जीवन के किसी भी पहलू को समझने में चयन की, पसंद-नापसंद की प्रक्रिया आड़े नहीं आती?

सादगी

सादगी क्या है? सादगी का मतलब क्या अनावश्यक को छिटक कर परे करना और आवश्यक का पीछा करना है—जिसका मतलब हुआ जो पसंद है उसे चुन लेना? ज़रा गौर करें। क्या इसका मतलब यही नहीं हुआ—चुनना? मैं ज़रूरी को चुनता हूं और गैरज़रूरी को एक तरफ कर देता हूं। यह चुनने की प्रक्रिया क्या है? गहराई से सोचें। वह कौन सा तत्त्व है, वह कौन सी सत्ता है जो चयन करती है? मन ही तो, है न? इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप इसे क्या कहते हैं। आप कहते हैं, यह आवश्यक है मैं इसका चयन करूंगा। आपको कैसे पता कि क्या आवश्यक है? या तो आपने, अन्य लोगों ने जो कहा है उसके या अपने खुद के अनुभव के आधार पर एक ढर्रा बना लिया है कि क्या मुख्य है, आवश्यक है। क्या आप अपने अनुभव पर भरोसा कर सकते हैं? क्योंकि जब आप चुनते हैं, आपका चयन तो आपकी इच्छा पर आधारित होता है। जिसे आप आवश्यक कहते हैं वह असल में आप को संतुष्टि प्रदान करने वाली शै होती है। तो क्या आप फिर से वापस पुरानी प्रक्रिया में नहीं लौट आते, है ना? क्या एक उलझा हुआ मन चुन सकता है? अगर ऐसा करता है तो उसका चुनाव भी उलझनभरा ही होगा।

इसलिए, आवश्यक और अनावश्यक के बीच चुनाव सादगी नहीं है। यह एक संघर्ष है। संघर्ष में, भ्रम में जी रहा मन कभी सरल नहीं हो सकता। तो जब आप यह सब झाड़ कर अपने से परे कर देते हैं, जब आप सब झूठी बातें और मन की चालें देख लेते हैं, जब आप यह महसूस करते हैं, इसे देख लेते हैं, इसका निरीक्षण करते हैं, इसके प्रति सजग होते हैं, तब आपको पता

चल जाता है कि सादगी क्या है। एक मन जो मत-विश्वास से बंधा है कभी सरल नहीं हो सकता। ज्ञान द्वारा अपंग बना दिया गया मन सरल नहीं है। एक मन जो भगवान, महिलाओं या संगीत द्वारा विचलित-रोमांचित है, इनमें से कुछ भी जिसका ध्यान बंटाने में सक्षम है, ऐसा मन एक सरल मन नहीं है। किसी कार्यालय की दिनचर्या में या अनुष्ठानों-मंत्रों में जकड़ा हुआ मन सरल नहीं है। सादगी वह कर्म है जो विचार पर आधारित नहीं। लेकिन यह एक बहुत ही दुर्लभ चीज़ है, इसका मतलब है सृजन। जब तक सृजन नहीं है, हम उपद्रव, दुख और विनाश के केंद्र बने हैं। सादगी कुछ ऐसा नहीं है जिसके आप पीछे पड़ें और जिसकी अनुभूति करें। सादगी सही समय पर आती है, जैसा कि एक फूल समय आने पर खिलता है—जब अस्तित्व और रिश्तों के तानेबाने की पूरी प्रक्रिया को समझ लिया जाता है। क्योंकि हमने इसके बारे में नहीं सोचा है, इसका कभी परीक्षण नहीं किया, हम इसके प्रति जागरूक नहीं हैं, हम एक खास तरह की सादगी के सभी बाहरी रूपों को अच्छा मानते हैं—जैसे सिर मुंड़ाना, किसी खास तरीके से कपड़े पहनना या न पहनना। यह सब तो सादगी नहीं है। सादगी उपलब्धि का विषय नहीं है। सादगी आवश्यक और अनावश्यक के बीच निहित नहीं है। यह आती है जब स्व नहीं रहता, जब स्व अटकलों में, निष्कर्षों में, विश्वासों में, धारणाओं की ऊहापोह में नहीं जकड़ा होता। ऐसा ही मन सच्चाई का पता लगा सकता है। ऐसा ही मन अपरिमेय, अनिर्वचनीय को ग्रहण करने में सक्षम है—और यही सादगी है।

पांचवी वार्ता, मद्रास, १९५२

ज़िम्मेदारी और आज़ादी के बीच रिश्ता

स्वतंत्रता जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण कारकों में से एक है। दुनिया भर में आदमी ने राजनीतिक स्वतंत्रता के लिए लड़ाई लड़ी है। धर्मों ने स्वतंत्रता का वादा किया है, इस दुनिया में नहीं, बल्कि उस दुनिया में। पूंजीवादी देशों में, व्यक्तिगत स्वतंत्रता कुछ हद तक मौजूद है, और साम्यवादी देशों ने इसे नकारा है। प्राचीन काल से आदमी के लिए आज़ादी की बड़ी अहमियत रही है, और इसके विरोधी भी रहे हैं, राजनीतिक ही नहीं बल्कि धार्मिक भी—धर्माधिकारियों द्वारा पूछताछ और न्यायिक जांच के माध्यम से, गिरजे से बहिष्कार करके, और कई तरह के अत्याचार, देशनिकाला आदि के ज़रिये; और आदमी की स्वतंत्रता की खोज को एकदम नकारा तक गया। आज़ादी के लिये कई बार लड़ाई और जवाबी लड़ाई लड़ी गयी, स्वतंत्रता के लिए आदमी के प्रयासों का पूरे इतिहास भर यही दस्तूर रहा है।

आत्म अभिव्यक्ति और सोच-विचार व बोलने की स्वतंत्रता विश्व के कुछ भागों में मौजूद है, लेकिन कई जगहों में यह नहीं है। जो लोग संस्कारबद्ध हैं, अपनी पृष्ठभूमि के खिलाफ विद्रोह करते हैं, और अपरिपक्व तरीके से प्रतिक्रिया करते हैं। यह प्रतिक्रिया जो अलग अलग रूप लेती है इसी को 'स्वतंत्रता' की संज्ञा दे दी जाती है। राजनीति की प्रतिक्रिया अक्सर राजनीति के क्षेत्र से विदा लेने के लिये होती है। आर्थिक व्यवस्था की प्रतिक्रिया किसी विचारधारा या किसी एक व्यक्ति के नेतृत्व का सहारा लेकर छोटे समुदायों की रचना का रूप लेती है—जिसमें अधिकार व नियंत्रण को नकारा जाता है और स्वावलंबी होने की कोशिश रहती है, लेकिन आमतौर पर ये प्रयास देर-सबेर बिखर ही जाते हैं। विश्वास को स्थापित करने वाले धार्मिक संगठनों के खिलाफ

प्रतिक्रिया भी अन्य धार्मिक संगठनों में शामिल होने या किसी गुरु या नेता का पालन करने या किसी पंथ में शामिल होने तक ही जाती है। या व्यक्ति तमाम धार्मिक प्रयासों से इनकार करता है। क्या यह सब स्वतंत्रता के लिये होने वाली मात्र बाहरी गति नहीं है?

स्वतंत्रता को अक्सर गति के अर्थ में लिया जाता है, जो भौतिक-शारीरिक स्तर पर आने-जाने की आज़ादी है या सोच-विचार के स्तर पर अभिव्यक्ति की आज़ादी। ऐसा प्रतीत होता है कि हमारी आज़ादी की मांग हमेशा सतही रहती है, यहां से वहां तक जाने के लिए, क्या पसंद है वही सोचने की आज़ादी, वही करने की आज़ादी, चुनने व अधिक से अधिक व्यापक अनुभव खोजने की आज़ादी। निश्चित रूप से ऐसी स्वतंत्रता बेहद सीमित होगी। इसमें अनंत संघर्ष, युद्ध और हिंसा शामिल हैं। आंतरिक स्वतंत्रता बिल्कुल अलग ही बात है। जब गहरी, मौलिक स्वतंत्रता है, जो स्वतंत्रता के विचार में नहीं बल्कि वास्तविकता में है, तब उसमें आदमी के सभी प्रयासों की गति शामिल है। इस स्वतंत्रता के बिना, जीवन हमेशा समय और संघर्ष के सीमित दायरे के भीतर एक गतिविधि बनकर रह जाएगी।

तो जब हम स्वतंत्रता की बात करते हैं हमारा आशय बुनियादी मुद्दे से होता है। यह किसी चीज़ से आज़ादी की बात नहीं है। बल्कि ध्यान उस मन और उस दिल की गुणवत्ता की ओर है जो स्वतंत्र है, जिसमें दिशा मौजूद नहीं है। किसी चीज़ से मुक्ति एक संशोधित निरंतरता है, और इसलिए यह स्वतंत्रता नहीं है। जब दिशा है, और इसलिए पसंद-नापसंद है, तब स्वतंत्रता मौजूद नहीं रह सकती, चूंकि दिशा विभाजन है और इसलिए चयन है, संघर्ष है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता जैसी कोई चीज़ नहीं है, बस केवल स्वतंत्रता है। 'इंडिविड्युल' (व्यक्ति) शब्द का अर्थ ही है अविभाज्य,

न कि सामूहिक के विरोध में खड़ी कोई इकाई। लेकिन हमने व्यक्ति-व्यष्टि की एक अवधारणा बना ली है जो संस्कारबद्धता से उपजे अपने कुछ खास गुणों और प्रवृत्तियों को लिये रहती है। और हम इसे सामूहिक के विरोध में ला खड़ा करते हैं। यह कंडीशनिंग संस्कृति का हिस्सा है—आर्थिक, सामाजिक इत्यादि—और इसमें मन पला-बढ़ा है। स्वतंत्रता इस कंडीशनिंग से परे है, न कि चेतना के क्षेत्र के भीतर—चेतना जिसे उसकी अंतर्वस्तु निर्मित करती है। ज़िम्मेदारी जो कि कंडीशनिंग से, संस्कारबद्धता से परे है, वह 'तथाकथित आज़ादी' से उपजी ज़िम्मेदारी से अलग है।

एक अनुकूलित, संस्कारबद्ध मन की ज़िम्मेदारी तो गैरज़िम्मेदारी है, लापरवाही है, जो समाज की वर्तमान संस्कृति में साफ दिखती है—पूर्व में भी और पश्चिम में भी। यह लापरवाही शिक्षा के क्षेत्र में, सामाजिक अन्याय में, राष्ट्रीय विभाजनों में दिखाई पड़ती है, इस सबका नतीजा होता है प्रतियोगिता, युद्ध, भुखमरी, अमीरी और गरीबी। संगठित धर्मों की लापरवाही इन संस्कृतियों को उनके द्वारा दिये जा रहे समर्थन और सहयोग को देखने पर साफ नज़र आती है। ये धर्म नैतिकता का उपदेश देते हैं, लेकिन भ्रष्टाचार को बल देते हैं। वे एक दूसरे के साथ संघर्षरत हैं, ज़ोर देकर कहते हैं कि सत्य अकेले उन्हीं के पास है, कि उनके देवी-देवता ही असली हैं। यह गैरज़िम्मेदारी दिखती है जब असलियत और मानव के बीच किसी बिचौलिये को रखा जाता है। यह गैरज़िम्मेदारी, यह लापरवाही ज़ाहिर होती है जब मंदिर, मस्जिद और गिरजाघर देश में शक्ति के केंद्र बन जाते हैं।.

जब स्वतंत्रता है तब ज़िम्मेदारी का अर्थ काफी अलग है। ज़िम्मेदारी स्वतंत्रता को नकारती नहीं है—वे एक साथ चलते हैं। जब स्वतंत्रता की मौलिक गहरी सच्चाई मौजूद है, तब ज़िम्मेदारी का सरोकार पूरे जीवन के साथ होता है, न कि जीवन के एक हिस्से के साथ। इसका सरोकार जीवन की समूची प्रक्रिया से है

न कि किसी विशेष गति से, मन व हृदय की पूरी गतिविधि के साथ संबंध है, न कि किसी एक विशेष गतिविधि या दिशा के साथ। स्वतंत्रता कुल सद्भाव को, कुल सामंजस्य को कहेंगे जिसमें ज़िम्मेदारी मैदान में पनप रहे फूल की तरह सहज और स्वाभाविक है। इसका स्रोत न प्रेरणा है, न आरोपण। यह स्वतंत्रता का स्वाभाविक नतीजा है। ज़िम्मेदारी के बगैर स्वतंत्रता है ही नहीं। हर चुनौती का मुक्ति के धरातल पर खड़े रहकर प्रत्युत्तर देना ज़िम्मेदारी है। अपर्याप्त प्रत्युत्तर लापरवाही की निशानी है। आसक्ति में जीने वाला निर्भरताग्रस्त मन समष्टि के प्रति गैरज़िम्मेदार हो जाता है।

मुक्ति प्रेम है जो स्वभाववश सड़क किनारे के फूल के लिए ज़िम्मेदार है। और ऐसे ही पड़ोसी के लिये भी, चाहे पड़ोसी बगल में हो या एक हज़ार मील दूर।

करुणा मुक्ति का अपरिहार्य लक्षण है।

'द होल मूवमेंट आफ लाइफ इज़ लर्निंग' से उद्धृत'

स्वतंत्रता से जुड़े प्रश्न

इस दुनिया में काफी अराजकता, अव्यवस्था, गड़बड़ी है, पर इसे लाया कौन है? यही हमारा पहला प्रश्न है। आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक और इसी तरह अन्य तरीकों से जितना भी कुछ विश्व में हो रहा है, वो युद्ध की ओर अग्रसर होता जा रहा है, और इस पूरी गड़बड़ी के लिए कौन ज़िम्मेदार है? युद्ध जारी हैं, अभी भी भीषण युद्ध हो रहे हैं। पर क्या हममें से प्रत्येक बौद्धिक रूप से न महसूस कर तथ्यात्मक रूप से अपने रोज़ के जीवन में यह देख सकता है कि, जिस घर में हम रहते हैं वह किसी बाहरी व्यक्ति ने नहीं बनाया, वह घर के ही व्यक्ति बनाते हैं। क्या हम इस परस्पर विरोधी अव्यवस्था को, बेतरतीबी को महसूस करते हैं, क्या हमें यह एहसास है कि हमारे पास कितनी कम आज़ादी है? आज़ादी शब्द में प्रेम निहित है, न कि ऐसी आज़ादी कि आप जब चाहें, जहां चाहें, जो भी आपको पसंद है, करें। चूंकि हम इस धरा पर रह रहे हैं, हम सब, और हममें से प्रत्येक अपनी-अपनी स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति, पूर्णता, संबोधि के अपने-अपने मार्ग या जो कुछ भी तलाश रहे हैं। विशेष धार्मिक ढांचे, विश्वास, अविश्वास, श्रद्धा और उसके साथ ही राजनैतिक व धार्मिक अधिसत्ता, पुराने ढर्रे पर चली आ रही पुरोहितगिरी— यह सब हमारे साथ चल रहा है। तो हमारे पास बहुत कम आज़ादी है। और वह शब्द, जो कि हरएक मनोरोगी और प्रत्येक मनुष्य द्वारा खुलकर इस्तेमाल होता है, चाहे वह रूस में हो, जहां भयानक उपद्रव है, या तथाकथित प्रजातांत्रिक विश्व में, प्रत्येक व्यक्ति आंतरिक रूप से, चेतन-अचेतन रूप से स्वतंत्रता चाहता है, जैसे कि संसार में प्रत्येक वृक्ष मर्यादा और प्रेम के एहसास के साथ आगे बढ़ने के लिए स्वतंत्रता चाहता है।

स्वार्थ का स्वतंत्रता के साथ क्या संबंध है? देखिए हम यहां मुद्दों पर साथ-साथ बात कर रहे हैं, मैं कहना चाहूंगा कि आप यहां मंच पर बैठे व्यक्ति को, वक्ता को केवल सुन भर नहीं रहे हैं। और वह बिल्कुल महत्त्वपूर्ण नहीं है। और वक्ता इस बारे में एकदम स्पष्ट है कि वह महत्त्वपूर्ण नहीं है। लेकिन निवेदन है कि आप गंभीरतापूर्वक उसे सुनें ऐसे जैसे कि दो मित्र आपस में बात करते हैं। हम पता लगा रहे हैं कि स्वतंत्रता और स्वार्थ में क्या संबंध है? आप स्वतंत्रता और स्वार्थ को कहां विभाजित करेंगे? और यह स्वार्थ है क्या? विचार और समय का क्या रिश्ता है? ध्यान दीजिये, ये सारे प्रश्न स्वतंत्रता में समाहित हैं। मन में यह बात बैठा लीजिए कि स्वतंत्रता कभी किसी महत्त्वाकांक्षा, लालच, ईर्ष्या और ऐसी किसी चीज़ को बढ़ावा नहीं देती। स्वार्थ और स्वतंत्रता में क्या संबंध है? क्या आप स्वार्थ को जानते हैं? स्वार्थ हो सकता है कि हमारे जीवन में हरएक चीज़ में हो—ठीक? क्या हम साथ-साथ कदम रख रहे हैं? क्या आप वाकई निश्चित हैं कि हम एक साथ मिलकर बात कर रहे हैं? यहां कोई ऊंचे पद पर आसीन नहीं है बल्कि हम साथ बैठकर बात कर रहे हैं।

तीसरी वार्ता, ब्राकवुड पार्क, ३१ अगस्त, १९८५

स्वतंत्रता और व्यवस्था

हम हाल ही में कह रहे थे, हमें समाज में खुलेपन और स्वतंत्रता के साथ व्यवस्था स्थापित करनी होगी। समाज आपसी रिश्तों का आयोजन है। उस संगठन में हमें स्वतंत्रता लानी होगी, स्वतंत्रता समाज में होनी ही चाहिए और उसका व्यवस्थित होना निहायत ज़रूरी है। अन्यथा वह स्वतंत्रता नहीं है, वह केवल समाज की खिलाफत है, मात्र प्रतिक्रिया है। बात यही है, हम में से ज़्यादातर अपने आसपास के माहौल की पकड़ में हैं, अतः हम प्रतिक्रिया करते हैं, विद्रोह करते हैं, पर प्रतिक्रिया से जन्मा विद्रोह मुक्ति नहीं ला सकता, यह विकार ही लाएगा, विकृति ही लाएगा। स्वतंत्रता, मुक्ति एक मनःस्थिति है, चित्त की वह अवस्था है जो किसी प्रतिक्रिया का परिणाम नहीं है, जैसे कि साम्यवाद पूंजीवाद को लेकर एक प्रतिक्रिया है, और दैनिक जीवन में या संगठित समाज में इस तरह की प्रतिक्रिया आगे बेतरतीबी की ओर ही ले जाती है। समाज में तकनीकी व्यवस्था का बोलबाला है, दुनिया भर में ऐसा ही है। एक साथ काम करने के लिए, एक साथ रहने के लिए, एक साथ मिलकर कार्य करने के लिए, एक दूसरे के साथ सहयोग कर पाने के लिए व्यवस्था आवश्यक है, हर पहलू का तरतीब से होना ज़रूरी है। लेकिन यह सारी व्यवस्था तकनीकी आवश्यकता का नतीजा है, इसकी जड़ सुविधा की खोज में है, डर में है, अतः प्रौद्योगिकी, तकनीक की बुनियाद पर खड़ी व्यवस्था, असल में दुर्व्यवस्था है, इसमें विकार है, क्योंकि इंसान आज़ाद नहीं है, और आज़ादी केवल तभी घटित होती है जब हम इंसान के साथ इंसान के मनोवैज्ञानिक संबंध को समझ लेते हैं और उस मनोवैज्ञानिक संबंध में व्यवस्था

ला पाते हैं। यह वक्ता और आप के बीच एकदम स्पष्ट हो जाना चाहिए।

जब हम स्वतंत्रता की बात करते हैं, हम प्रतिक्रिया की बात नहीं कर रहे, हम उस व्यवस्था की बात कर रहे हैं जो आदमी के पूरे मानस, उसकी पूरी सामाजिक व मानसिक संरचना के कुल सार की समझ से उपजती है और उस संरचना के समझने में स्वतंत्रता का आविर्भाव है। इस स्वतंत्रता की मौजूदगी व्यवस्था लाती है, और केवल इसी माहौल में लोग एक दूसरे के साथ शांति से रह सकते हैं। तो, इन सारी वार्ताओं के दौरान हमारा सरोकार स्वतंत्रता में व्यवस्था को फलीभूत होने देने से है। याकि ऐसा कहें कि मानव मन में आमूल क्रांति, बुनियादी बदलाव लाना है जिसके लिए आदमी और आदमी के बीच सामाजिक रिश्ते के साथ उसके मनोवैज्ञानिक रिश्ते की समझ होना अनिवार्य है, जो स्वतंत्रता लाने में सक्षम है। और इस समझ के माध्यम से व्यवस्था या तरतीबी आ सकती है। इसलिए हमारा सरोकार इस बात से है कि कैसे हम समाज के दास न बन कर एक नई दुनिया में रिश्ता बनाएं जो व्यवस्थित हो और आदमी–आदमी के आपसी रिश्ते में विकार न पैदा करे।

जिस रूप में समाज आज नज़र आता है, आदमी का आदमी से रिश्ता आयोजित है, इसमें विकार है, क्योंकि हम संघर्ष में जीते हैं, न केवल अपने भीतर बल्कि एक दूसरे के साथ भी, चूंकि हमने समुदायों के रूप में खुद को विभाजित कर दिया है, भाषा के स्तर पर, राष्ट्र और धर्म के स्तर पर। परिवार समुदाय के विरोध में रहता है, समुदाय राष्ट्र के विरोध में—बाहरी तौर पर। भीतरी तौर पर भी कुछ ऐसा ही है—सफलता के लिए एक भारी आग्रह है, प्रतिस्पर्धा है, बाहरी मापदंडों के अनुरूप होने की लालसा है, महत्त्वाकांक्षा का दबाव है, निराशा और रोज़मर्रा की ज़िंदगी की उकताहट है, ऊब है, और हर शख्स में दिखती वह निराशा, जब वह खुद को पूरी तरह से

बेइंतहा अकेला पाता है जिसका कोई हल नहीं है। यह सब जानबूझकर या अनजाने में संजोया रिश्ते की लड़ाई का मैदान है। और जब तक हम उस रिश्ते में व्यवस्था नहीं लाते, भले ही आर्थिक, सामाजिक या वैज्ञानिक क्रांति कुछ भी ला खड़ा कर दें, यह सब अनिवार्य रूप से टूटफूट कर बिखर जाने वाला है, क्योंकि मानव मस्तिष्क के पूरे ढांचे को ठीक से समझकर नियत नहीं किया गया और मुक्ति का स्वर-संगीत वहां नहीं बज पाया।

इसलिए हमें यह एहसास होना चाहिए कि हम एक संपूर्ण मनोवैज्ञानिक क्रांति लाने के लिए ज़िम्मेदार हैं, क्योंकि हर एक, हर इंसान समाज का हिस्सा है, समाज से अलग नहीं है। अलग-थलग व्यक्ति जैसी कोई चीज़ नहीं होती। उसका एक नाम हो सकता है, एक अलग परिवार हो सकता है आदि आदि। लेकिन मनोवैज्ञानिक रूप से वह एक अलग व्यक्ति है ही नहीं, क्योंकि वह अपने समाज द्वारा संस्कारित है, और अपनी मान्यताओं, अपने डर, अपने मत-सिद्धांतों में जकड़ा है जो उसके समाज द्वारा, उसके जीवन की परिस्थितियों द्वारा उस पर मढ़ दिए जाते हैं। इस सब में शक की कोई गुंजाइश नहीं है। वह उस समाज द्वारा जिसमें वह रहता है संस्कारबद्ध होता है और उस समाज की रचना भी उसी की कारगुज़ारी होती है। वह उस समाज के लिए ज़िम्मेदार है, और उसे ही, एक इंसान के नाते, समाज में आमूल परिवर्तन लाना होगा।

और यही हर इंसान की सबसे बड़ी ज़िम्मेदारी है—कुछ सामाजिक सुधारों में शामिल हो जाने की बात नहीं है, वह सब तो पूरी तरह से अपर्याप्त है, पूरी तरह बेतुका है, कुछ सनकी विचारों के लोगों की कल्पना हो सकती है। हम इंसान के नाते क्या कर सकते हैं, क्या करना होगा, बस वही हमारी ज़िम्मेदारी है—यानी एक मनोवैज्ञानिक क्रांति को लाना, ताकि आदमी और आदमी के बीच का रिश्ता तरतीबी पर, व्यवस्था पर आधारित हो। इस व्यवस्था का वजूद में आना केवल एक मनोवैज्ञानिक

क्रांति के माध्यम से ही संभव है, और इस क्रांति के लिए ज़रूरी है कि हम में से हरएक गंभीरता से, संजीदगी से और पूरी ईमानदारी से इस ज़िम्मेदारी को समझे।

बंबई, दूसरी वार्ता, १४ फरवरी १९६५

युद्ध हमारे हर रोज़ के जीवन का नतीजा है।

कृष्णमूर्ति : क्या यह एकदम स्पष्ट नहीं है कि हम में से हर एक युद्ध के लिए ज़िम्मेदार है? युद्ध अज्ञात कारणों से नहीं उपजते। वे निश्चित स्रोतों से उभरते हैं और जो लोग खुद को इस आए दिन के युद्ध नामक पागलपन से खुद को मुक्त करना चाहते हैं, उन्हें इसके कारणों की खोज कर आज़ाद हो जाना चाहिए। युद्ध आदमी की सबसे बड़ी आपदाओं में से है—उसी आदमी में दूसरी ओर जीवन की सच्चाई का, वास्तविकता का अनुभव करने की क्षमता भी है। उसका सरोकार युद्ध के कारणों को खुद के भीतर नष्ट करने से होना चाहिये न कि उनका विनाश करने से जो कमोबेश कलंकित हैं और युद्ध में घिनौनापन दर्शाते हैं। हमें छोटे-छोटे मुद्दों में नहीं फंस जाना चाहिए बल्कि बड़े, खास मुद्दे पर ध्यान देना चाहिये जो कि आयोजित हत्या है। गौण मुद्दों में फंसकर आप भयग्रस्त हो सकते हैं और आपमें बदला लेने की इच्छा उपज सकती है, लेकिन युद्ध और संघर्ष के मुख्य कारणों को समझे बिना द्वंद्व और दुख कम नहीं होंगे।

दूसरे की हत्या करना व्यक्ति के लिये सबसे बड़ा अपराध है—जब कि वह उच्चतम को साकार करने में सक्षम है। युद्ध, हत्या के लिये जानबूझकर तैयार किया गया संगठन, तबाही की सबसे खतरनाक गर्त है जिसमें आदमी खुद-ब-खुद गिरने को तैयार बैठा है, इसमें कितना अनकहा दुख, विनाश, गिरावट और

After all, to find out anything you must have energy, and you need a great deal of energy to inquire into something totally new. And to have that energy, you must have listened to the old pattern of life, neither condemning nor approving. You must have listened to it totally—which means you have understood it, you have understood the futility of living that way. When you have listened to the futility of it, you are already out of it. Then you have—not intellectually but deeply—felt the uselessness of living that way and have listened to it completely, totally; then you have the energy to inquire. If you have not the energy, you cannot inquire. That is, when you deny that which has brought about this misery, this conflict—which we have gone into—that denial, that very negation of it is positive action.

2nd March, Bombay, 1966 (Authentic Report)

आखिरकार, कुछ भी खोजने के लिए ऊर्जा तो चाहिये, और यदि आप कुछ ऐसा खोजना-जांचना चाह रहे हैं जो पूरी तरह से नया है तो आपको वाकई खूब ऊर्जा की ज़रूरत होगी। और उसके उपलब्ध होने के लिये ज़रूरी है कि आपने अपने जीवन के पुराने ढर्रे की कथा-कहानी अच्छे से, ध्यान से सुनी हो, बिना तरफदारी के, बिना पसंद-नापसंद के। यानी आापने इसे पूरे मन से सुना है—अर्थात् सार आपकी समझ में आ गया है, आप उस तरह से जीने की निरर्थकता को समझ गए हैं। जब आप इस तरह निरर्थकता को देख-सुन लेते हैं, पहचान लेते हैं, तो आप इससे बाहर आ चुके होते हैं। तो फिर आपको—बौद्धिक स्तर पर नहीं बल्कि गहराई से—इस बात का एहसास हो जाता है कि उस तरह से जीना कितना बेमानी है, और इस बेहूदगी को आप पूरी तरह से, पूरी तवज्जो के साथ, सुन पाते हैं—अब आप के पास छानबीन के लिए ऊर्जा रहती है। जब आप इन तमाम दुखों और संघर्षों के कारकों को दरकिनार कर देते हैं, उनका निषेध कर देते हैं—जिस बारे में हम चर्चा कर चुके हैं—तो आप पाएंगे कि वह निषेध ही सकारात्मक गति है, विध्यात्मक कर्म है।

२ मार्च, बाम्बे, १९६६ (प्रमाणिक विवरण)

सत्यानाश निहित है। जब एक बार आप दूसरों की हत्या के रूप में संगठित इस तरह की एक दैत्याकार 'बुराई' को अपने जीवन में स्वीकार लेते हैं, उसे जगह दे देते हैं तो आप अनगिनत लघु आपदाओं के लिए दरवाजा खोल देते हैं। हम में से हरएक युद्ध के लिए ज़िम्मेदार है चूंकि वर्तमान स्थिति को लाने में हम में से हरएक का योगदान रहा है, भले ही जानबूझकर हो या अनजाने में—ज़िंदगी के प्रति जिस तरह का हम दृष्टिकोण रखते हैं, जिस तरह के गलत मूल्यों का हम लालन-पालन करते हैं, यह सब उसमें शामिल है। हमने सनातन मूल्यों को खोकर सतही-छिछले मूल्यों को अपना लिया है। इच्छा के विस्तार का कोई अंत नहीं है। वस्तुएं आवश्यक हैं, लेकिन उनका कोई शाश्वत मूल्य नहीं है और संपत्ति के लिए पागल इच्छा संघर्ष और दुख की ओर ही ले जाती है।

जब हर स्तर पर लोभ-लालसा को प्रोत्साहित किया जाता है, जब राष्ट्रवाद और अलग संप्रभु राज्य मौजूद हैं, जब धर्म लोगों को अलग-अलग कर रहे हैं, जहां असहिष्णुता और अज्ञान का बोलबाला है तो सहयात्रियों की, भाई-बंधुओं की हत्या तो होगी ही। युद्ध हमारे हर रोज के जीवन का नतीजा है। जुनून, खराब नीयत और उत्पीड़न हम उचित ठहरा रहे हैं—राष्ट्र के नाम पर। राज्य या देश के लिए, एक विचारधारा के लिए मरना-मारना आवश्यक माना जाता है, नेक कर्म समझा जाता है। हरएक इस अपमानजनक बेरहमी में शामिल है, चूंकि हरएक में दूसरे को नुकसान पहुंचाने की इच्छा मौजूद है। युद्ध अपनी क्रूर प्रवृत्ति को छूट देने का एक साधन बन जाता है और लापरवाही को, गैरज़िम्मेदारी को प्रोत्साहन मिलता है। इस तरह की स्थिति तभी संभव है जब ऐंद्रिक, सतही मूल्यों का बोलबाला होता है।

चूंकि हरएक इस संस्कृति को बनाने-संवारने के लिए ज़िम्मेदार है, अगर हरएक खुद को मौलिक रूप से नहीं बदलता,

तो इस क्रूर दुनिया और उसके बेहूदा तौर-तरीकों को हम कैसे बदल सकते हैं? हरएक इन त्रासदियों और आपदाओं, अत्याचार और वहशीपन के लिए ज़िम्मेदार है, जब तक व्यक्ति जातियों, समूहों के संदर्भ में सोचता और महसूस करता है, या खुद को हिंदू या बौद्ध, ईसाई या मुस्लिम के रूप में देखता है। अगर एक तथाकथित 'परदेशी' भारत में एक राष्ट्रवादी के हाथों मारा जाता है, तो मुझे लगता है कि हत्या के लिए मैं बकायदा ज़िम्मेदार हूं, अगर मैं एक राष्ट्रवादी हूं। लेकिन मैं ज़िम्मेदार नहीं हूं, अगर मेरे ज़हन में देशों, समूहों, या वर्गों के लेबल कोई मायने नहीं रखते, अगर मैं लंपट नहीं हूं, अगर मुझ में किसी के लिये कोई द्वेष नहीं है, अगर मैं सांसारिक नहीं हूं। केवल तभी आप हत्या की, अत्याचार और दमन की ज़िम्मेदारी से मुक्त हैं।

हम मानवता की भावना को खो चुके हैं, हम अपने से संबंधित वर्ग या समूह के लिये ही ज़िम्मेदारी महसूस करते हैं। हमारा ज़िम्मेदारी का एहसास एक नाम के लिए, एक लेबल के लिए होता है। करुणा, हमदर्दी, सर्वस्व के प्रति प्रेम हम खो चुके हैं। और जीवन के इस स्पंदन, इस ऊर्जस्विता भरी लौ की अनुपस्थिति में शांति और खुशी के लिये हम नेताओं या पुजारियों-महात्माओं का मुंह ताकने लगते हैं। उनसे कोई उम्मीद नहीं है। हरएक में वह रचनात्मक समझ है, वह हमदर्दी है जो आदमी के कल्याण के लिए आवश्यक है। सही साधन सही परिणामों की ओर ले जाते हैं, गलत साधन केवल खालीपन और मृत्यु ही लायेंगे, न कि शांति और हर्षोल्लास।

पांचवी सार्वजनिक वार्ता, ओहाई, १९४५

ऐक्शन, विचार और टकराव

...मेरे ख्याल में 'ऐक्शन' के समूचे सवाल को समझना बहुत अहम है, मैं इस शब्द का इस्तेमाल किन्हीं अमूर्त अर्थों में या महज़ किसी विचार के रूप में नहीं कर रहा। मेरा मतलब है एक वास्तविक कर्म-व्यवहार, कुछ करना। भले ही बागवानी का काम हो, दफ्तर जाना हो, किसी पेड़ को निहारना, नदी की रवानगी को देखना या फिर चुपचाप चलते जाना बिना कुछ सोचे विचारे-आप जो भी कर रहे हों ध्यानपूर्वक उसे देखना, यह सब कर्म का हिस्सा है। हममें से अधिकांश लोगों के लिए यह कर्म टकराव ले कर आता है। हमारा ऐक्शन, भले ही कथित तौर पर कितना ही गहरा या फिर सतही क्यों ना हो, उबाऊ, दुहराव से भरा और थका देने वाला हो जाता है, महज़ एक मशीनी गतिविधि जिसका कुछ खास महत्त्व नहीं। सो मेरे ख्याल से ऐक्शन क्या है, कर्म क्या है उसे समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। कुछ भी करने में ऊर्जा लगती है—चलना हो, बोलना हो, देखना, सोचना या महसूस करना हो ऊर्जा लाज़िमी है। और जब ऊर्जा का वो प्रकटाव भीतर ही से विरोधों में जकड़ा हो तो ऊर्जा की बरबादी तो होगी ही। जैसा कि हम देख सकते हैं, हमारी सभी गतिविधियां, भले ही वो किसी भी स्तर पर हों, किसी ना किसी रूप में विरोध ही खड़े करती हैं भीतर ही भीतर हमें कुछ प्रयास करना पड़ता है, एक तरह का प्रतिरोध, सुरक्षा का भाव और इनकार वहां होता है। और बिना किसी टकराव के कुछ भी कर पाना क्या संभव है, बिना किसी प्रतिरोध के, बिना किसी भी प्रयास के? आज मैं इसी बारे में बात करना चाहता हूं, अगर संभव हो पाए तो।

जो भी संसार में हो रहा है वो तो साफ ही दीखता है।

कंप्यूटर, इलैक्ट्रिक ब्रेन और अनेक प्रकार की आटोमैटिक मशीनें आदमी के लिए अवकाश के नए-नए मौके पैदा कर रही हैं, और इस अवकाश पर संगठित धर्मों अथवा मनोरंजन संस्थानों का एकाधिकार होने वाला है। पता नहीं इन दोनों में कुछ ज़्यादा फर्क है भी या नहीं, लेकिन फिलहाल हम इन्हें अलग-अलग ही रखेंगे। जब आदमी के पास खूब फुर्सत होती है तो उस के पास बहुत ऊर्जा होती है—ढेरों ऊर्जा—और समाज की मांग तो यही रहती है कि उस ऊर्जा का इस्तेमाल सुचारू ढंग से हो, समाज विरोधी तरीके से नहीं। अपनी समाज विरोधी भावना पर काबू रखने लिए या तो इंसान खुद को अपने धर्म में, अपने मज़हब में खपत कर देगा या फिर तरह-तरह के मनोरंजनों में। या फिर वो साहित्य, कला, अथवा संगीत में खुद को डुबो देगा, जो कि मनोरंजन का ही एक दूसरा रूप है। परिणामस्वरूप आदमी और भी सतही होता चला जाएगा। वो दुनिया भर की किताबें पढ़ सकता है, धर्म सिद्धांतों की पेचीदगीयों को समझने की कोशिश कर सकता है, दर्शन और विज्ञान के रहस्यों को जान सकता है, साहित्य में वह कुछ तथ्यों एवं सत्यों का जानकार हो सकता है लेकिन फिर भी यह एक बाहरी बात ही रहेगी, जैसे कि तरह-तरह के धर्म और दूसरे मनोरंजन हैं। संस्थागत धर्म ये दावा करते हैं कि वो जीवन के भीतरी तत्वों की तलाश कर रहे हैं, लेकिन जैसा कि हमें पता है वो विश्वास, रीति, जड़-सूत्रों और अनुसरण की मांग करते हैं।

सो जब तक हम आधुनिक सभ्यता में अंतर्निहित इन सभी सूरतों से भली-भांति परिचित नहीं हो जाते, जाग नहीं जाते, वे हमारी ऊर्जा को शोषित करती रहेंगी, और फलस्वरूप हमारे ऐक्शन यूं ही सतही बने रहेंगे और उसी उथलेपन की वजह से हम अपने भीतर और बाहर हर जगह कलह-ग्रस्त रहेंगे, खुद ही में और समाज के साथ भी टकराव में उलझे रहेंगे। मानवीय विकास के हर क्षेत्र में—कला हो या विज्ञान, गणित हो या

उद्योग—और अपने पति-पत्नी, बच्चों अथवा पड़ोसियों के साथ सबंधों में टकराव बने ही रहेंगे और ये टकराव ऊर्जा की बरबादी हैं। इन टकरावों को रोकने के लिए और ऊर्जा के संरक्षण के लिए हमें खुद ही से यह समझना होगा कि ऐक्शन क्या है और इसे समझे बिना हमारे जीवन का बहाव बाहर की तरफ ही बढ़ता चला जाएगा और भीतर ही भीतर हम खोखले होते चले जायेंगे। यह कोई बहस या शंका का मुद्दा नहीं है ना ही यह आपकी या मेरी राय का सवाल है। ये तो वास्तविक तथ्य हैं। सो पहली बात तो यही है कि जिसे हम एक्शन कहते हैं, कर्म कहते हैं, वह है क्या? हमारे सभी कर्मों में स्पष्ट या फिर छुपा हुआ एक उद्देश्य रहता है, क्या ऐसा नहीं है? या तो हम किसी इनाम की फिराक में रहते हैं, कुछ हासिल करने के प्रयास में या फिर डर के मारे कुछ करने को राज़ी होते हैं। हमारे कर्म सदा किसी विचार या पैटर्न के अनुकूल ढलने में लगे रहते हैं या फिर किसी आदर्श तक पहुंचने में। समर्थन, अनुकूलन, अनुगमन, प्रतिरोध व इनकार—यही सब तो है जो कर्म-व्यवहार के तहत हम जानते हैं, और इसमें संघर्ष और कलह की अंतहीन शृंखलाएं छिपी हैं।

जैसा कि मैंने पहले एक दिन कहा, किसी ऐसे विषय के बारे में संवाद करना जिससे आप गहराई से ना जुड़े हों हमेशा ही थोड़ा मुश्किल होता है। मैं आप लोगों के साथ मन की ऐसी स्थिति के बारे में बात करना चाहता हूं जो उस कलह-क्षेत्र से सर्वदा भिन्न है जिसे हम कर्म कहते हैं। यह एक संपूर्ण कर्म है, एक ऐसा कर्म जिसमें कोई टकराव नहीं, मैं उस के बारे में आप को कुछ बताना चाहता हूं, इसलिए नहीं कि आप उसे स्वीकार कर लें, उससे सम्मोहित हो जायें या फिर उसे रद्द कर दें। जानते हैं, सबसे मुश्किल कामों में है मंच पर से बोलते हुए, जबकि दूसरे सब सुन रहे हों—यदि आप सचमुच ही सुन रहे हों—वक्ता तथा श्रोता के बीच सही संबंध स्थापित कर पाना। आप ढेर सारे शब्दों से चकाचौंध होने के लिए यहां नहीं आए, ना ही

मैं किसी तरह से आप लोगों को प्रभावित ही करना चाहता हूं। मै यहां कोई प्रापेगंडा नहीं कर रहा हूं, ना ही मेरा इरादा आप को निर्देशित करने का है। जैसा कि मैं अक्सर कहता हूं यहां ना तो कोई गुरू है ना ही शिष्य, सीखने की सिर्फ एक अवस्था है यहां, और अगर हम दिशा निर्देशों का ही इंतजार करते रहे कि कोई बताए कि क्या करें या क्या ना करें तो फिर आप और हम सीख तो नहीं पायेंगे। हम यहां किन्हीं मत-मतांतरों पर विचार नहीं कर रहे, ना ही मेरी कोई राय है। मैं तो सिर्फ चंद तथ्यों को उजागर करने की कोशिश कर रहा हूं, और आप खुद उन्हें देख-परख सकते हैं, मुआयना कर सकते हैं उनका, ठीक ! जिसका मतलब है आप को और मुझे एक सही संबंध स्थापित करना होगा, जिसमें एक ऐसा संवाद संभव हो पाए जो महज़ बौधिक ना हो, जिसमें उस तथ्य को हम पूरी तरह समझ पायें जिसका हम साथ-साथ निरीक्षण कर रहे हैं। हम एक दूसरे से नहीं बल्कि तथ्य से संवाद स्थापित कर रहे हैं, इसलिए तथ्य ज़्यादा महत्त्वपूर्ण हो जाता है, आपसे और मुझसे कहीं ज़्यादा। यह तथ्य ही है, और हमारा साथ मिल कर उस तथ्य को ग्रहण करना, जो सही माहौल बना सकता है, सही वातावरण, जिसका निश्चित ही हम पर गहरा प्रभाव पड़ेगा। सो मुझे लगता है कि जब हम खुद तथ्य पर ध्यान दे रहे हों तथ्य संबंधी किसी विचार या मत पर नहीं तो किसी शै को—किसी झरने को, पत्तों की फुसफुसाहट को या फिर अपनी ही सोचों और एहसासों को सुनना आश्चर्यजनक रूप से महत्त्वपूर्ण हो जाता है।

हम सब जानते हैं कि हमारे ऐक्शन टकराव खड़े करते हैं। कोई भी ऐक्शन, कोई भी कर्म-व्यवहार जो किसी विचार पर आधारित है, कोई फार्मूला या संकल्प जो किसी आदर्श पर खरा उतरने में लगा हो, हर हाल में टकराव ही खड़े करेगा। ये तो स्पष्ट है। अगर मैं किसी फार्मूले, किसी जड़सूत्र या ढांचे के मुताबिक चलता हूं तो मैं हर वक्त बंटा ही रहूंगा, जो मैं वास्तव

में हूं और जो मैं सोचता हूं कि मुझे हकीकत में होना चाहिए, उसमें विभाजन बना रहेगा। सो वहां कभी भी समग्र कर्म नहीं होता। वहां सदैव किसी विचार या आदर्श पर खरा उतरने का प्रयास रहता है, और इसीलिए सभी कर्मों में टकराव निहित ही रहता है, जैसा कि सभी जानते हैं—यह ऊर्जा की बरबादी है जो मन को पतन की ओर ले जाती है। ज़रा, इसे देखें, अपने ही मन की गतिविधियों का अवलोकन करें और आप देखेंगे कि यही सत्य है।

अब, मैं खुद से पूछता हूं कि क्या विचार के बिना कोई ऐक्शन है जो फलस्वरूप टकराव से भी मुक्त होगा, क्या ऐसा कोई कर्म है? दूसरे शब्दों में कहें तो क्या हर कर्म हमेशा प्रयास की मांग करता है, टकराव और संघर्ष ही खड़े करता है? मिसाल के तौर पर, मैं बात कर रहा हूं जो कि एक तरह से ऐक्शन ही है। बेशक इस बातचीत में टकराव सिर्फ तभी खड़ा होगा जब मैं खुद को आप पर थोपने की कोशिश करूंगा, आप को सहमत करवाने या कुछ बनने की कोशिश करूंगा। सो यह एक बेहद अहम बात है कि हम खुद ही यह पता लगायें कि क्या यहां हल्की सी भी कलह या संघर्ष के बिना जी पाना और कार्य करना संभव है—यही मुद्दा है, क्या कोई ऐसा ऐक्शन है जिसमें मन बिल्कुल अक्षत रहे, किसी भी बिगाड़ या पतन के बिना। लेकिन अगर आप का मन किसी भी तरह से प्रभावित है, या किसी कलह में फंसा है जो ऊर्जा की बरबादी है तो बिगाड़ और विकृति तो तय ही है। इस मामले की तह तक पहुंचने में ही मेरी दिलचस्पी है और आप की भी यही होनी चाहिए, क्योंकि हम यहां यही देखने का प्रयास कर रहे हैं कि क्या दुख, निराशा व भय के बिना जीवन संभव भी है या नहीं, किसी भी ऐसे काम के बिना जो मन को पतन की ओर धकेल दे। अगर यह संभव है तो ऐसे मन में क्या घटता है? क्या है ऐसा मन जो सदा ही समाज से अछूता रहता है, जिसमें ना भय है ना लोभ, ईर्ष्या है ना महत्त्वाकांक्षा,

ना ही वो सत्ता के पीछे दौड़ता है?

तह तक जाने के लिए हमें मन की मौजूदा हालत के प्रति सचेत होना होगा, शुरूआत यहीं से होगी, सभी टकरावों, दुखों, निराशाओं, विकृतियों और कुंठाओं सहित मन के वर्तमान के प्रति जागने से। हमें अपने आप में पूर्णतया जागृत होना होगा, उसी से ऊर्जा संचित होगी, और ऊर्जा का यही संग्रहण ही तो वह कर्म है जो मन में जमे सारे मैल धो डालता है जिसे आदमी ने सदियों से इकट्ठा किया है।

कर्म-व्यवहार में हमारी रुचि सिर्फ उसी की खातिर नहीं है, हम तो यह पता लगाना चाहते हैं कि क्या कोई ऐसा भी ऐक्शन है जो किसी भी तरह के टकराव खड़े नहीं करता। जैसा कि हमने देखा विचार, धारणाएं, फार्मूले, ढांचे, ढंग-तरीके, जड़-सूत्र, आदर्श—यही वो चीज़ें हैं जो ऐक्शन में टकराव खड़े करती हैं। और क्या किसी विचार के बिना जी पाना संभव है—हां, किसी भी पैटर्न और आदर्श के बिना, किसी धारणा और विश्वास के बिना? खुद इस मामले की तह तक पहुंचना निश्चित ही बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि आदमी यह भलीभांति देख सकता है कि प्रेम तो कोई विचार नहीं है, कोई पैटर्न या धारणा नहीं है। हममें से ज़्यादातर लोग प्यार की कोई धारणा पाले रखते हैं, लेकिन स्पष्ट है कि वो धारणा तो प्रेम नहीं है। या तो हम प्रेम करते हैं या नहीं करते। क्या यह मुमकिन है कि हम इसी दुनिया में रहें, मतलब दफ्तर वगैरह जायें, खाना बनायें, बर्तन धोयें, कार ड्राईव करें, और रोज़मर्रा की ज़िंदगी के वो सभी काम करें जो कि आज बहुत दोहरावपूर्ण हो चुके हैं और टकराव खड़े करते हैं—क्या यह सब मुमकिन है, जीना, सब कुछ करते हुए, और वो भी बिना किसी विचार के—और इस तरह अपने कर्म-व्यवहार को सारे टकरावों से मुक्त रख पाना?

पता नहीं आप कभी किसी सूनी सड़क से या भीड़ भरी

गलियों से गुज़रे हैं या नहीं, सभी कुछ देखते हुए, बिना किसी सोच विचार के? यह ध्यान की एक अवस्था है—निरख-परख की, जिसमें सोच-विचार की कोई घुसपैठ नहीं होती। हालांकि आप अपनी हर चीज़ के बारे में सजग होते हैं, लोगों को पहचानते हैं, पहाड़ों, पेड़ों और आती जाती कारों के प्रति सचेत हैं, लेकिन फिर भी मन विचार और कर्म के जाने पहचाने ढांचे में जकड़ा हुआ नहीं होता। मुझे नहीं मालूम कि आप के साथ कभी ऐसा घटा है कि नहीं। कभी कभार कोशिश करें, जब कभी सैर पर निकलें या फिर ड्राईव पर। सिर्फ देखें, बिना कुछ सोचे देखें, बिना किसी प्रतिक्रिया के जो विचारों को हवा देती है। हालांकि आप रंगों और आकारों को पहचानते हैं, पहचानते हैं कि यह नदी है, यह कार, बस या बकरी है, लेकिन कोई प्रतिक्रिया नहीं होती, बस शांत निहारना भर होता है, और शांत निहारने की यह कथित अवस्था ही तो ऐक्शन है, कर्म है। ऐसा मन अपने कामों में जानकारी का इस्तेमाल कर सकता है लेकिन वो प्रतिक्रियाओं में बंधा हुआ नहीं होता इसलिए इन अर्थों में विचार मुक्त होता है। ऐसे मन से—मन जो बिना किसी प्रतिक्रिया के सजग है—आप दफ्तर जा सकते हैं, और ऐसा कुछ भी कर सकते हैं।

ज़्यादातर लोग सुबह से शाम तक हमेशा बस अपने ही बारे में सोचते रहते हैं, हम इसी दायरे में काम करते हैं, उसी स्व-केंद्रित दायरे में। ऐसी सभी गतिविधियां, जो कि प्रतिक्रिया हैं, तरह-तरह के टकरावों की तरफ ले जाने को बाध्य हैं, पतन की ओर। और क्या यह मुमकिन है कि हम इसी संसार में रहें और उस दायरे से मुक्त रहें? मेरा मतलब यह नहीं है कि आप पहाड़ों की गुफाओं में जा छिपें या ऐसा ही कुछ करें बल्कि इसी संसार में रहते हुए एक मुकम्मल आदमी की तरह शून्य की अवस्था से काम कर पाना, क्या यह संभव है। कहीं इस शून्य शब्द से आप कोई गलत अर्थ तो नहीं निकाल लेंगे? मेरा मतलब है कि आप

चित्र बनायें, कविता रचें, दफ्तर जायें या कोई बातचीत करे, क्या भीतरी रूप से आप एक अवकाश को, एक रिक्त स्थल को सहेजे रह सकते हैं, और फिर उसी अवकाश से काम करें? क्योंकि जब भीतर अवकाश होता है, कोई कर्म टकराव खड़े नहीं करता।

मेरे ख्याल से यह खोज बहुत ही महत्त्वपूर्ण है—और यह कार्य आप को खुद ही करना होगा, क्योंकि इसे सिखाया पढ़ाया नहीं जा सकता। इसे खोजने के लिए पहले तो आप को यह समझना होगा कि कैसे सभी स्व-केंद्रित गतिविधियां टकरावों को जन्म देती हैं, और फिर खुद से पूछें क्या ऐसे ऐक्शन से मन कभी शांत हो सकता है। हो सकता है थोड़ी देर के लिए कुछ तसल्ली मिल जाए, लेकिन जब आप यह देखेंगे कि ऐसे सभी कामों में कलह-क्लेश तो लाज़िमी ही है, तो आप पहले ही से यह जानने का प्रयास शुरू कर चुके होंगे कि क्या कोई दूसरी किस्म का ऐक्शन भी है, ऐसा ऐक्शन जो टकरावों की तरफ नहीं ले जाता और फिर आप उस तथ्य को देखने के लिए मजबूर हो जायेंगे कि हां ऐसा है।

अब सवाल यह उठता है कि हम हमेशा तसल्लियों के ही पीछे क्यों भागते हैं? हम चाहे कुछ भी करें, हमारे सारे रिश्ते-नातों के पीछे कुछ पाने की ख्वाहिश हमेशा बनी ही रहती है, कोई पद, कोई ओहदा, कुछ ना कुछ हासिल करने और फिर उससे चिपके रहने की ख्वाहिश। असंतोष तभी उभरता है जब चीज़ें हमारी उम्मीदों पर खरी नहीं उतरती—ऐसा असंतोष तो सिर्फ प्रतिक्रियाओं की अन्य कड़ियों को ही जन्म देगा।

मुझे लगता है कि वो आदमी जो सचमुच ही संजीदा है, जिसे भली-भांति दिखता है कि कैसे हज़ारों सालों से आदमी बेहिसाब उलझनों और तकलीफों में जीता आया है, पूर्ण कर्म का स्वाद उसने चखा ही नहीं, वो खुद अपने लिए ज़रूर ही यह पता लगाएगा कि क्या वह एक ऐसे मन से कार्य करने में समर्थ है जो

समाज द्वारा भ्रष्ट नहीं हुआ और ऐसा वो तभी कर सकता है यदि समाज से वह खुद स्वतंत्र है। मैं समाज की मानसिक सरंचनाओं से मुक्ति की बात कर रहा हूं, यानी लोभ, ईर्ष्या, महत्त्वाकांक्षा और खुदी या अहम के पीछे की दौड़। जब इस सारे मानसिक ताने-बाने को समझ-बूझकर एक तरफ कर दिया जाता है, तो आदमी समाज से मुक्त हो जाता है। हो सकता वो पहले की तरह दफ्तर जाए, खरीदारी भी करे, सब कुछ करते हुए भी वो उस मानसिक ताने-बाने से आज़ाद रहता है जो मन को दूषित-विकृत करता है।

यूं आदमी उस बिंदु पर पहुंचता है जहां वह खुद यह देख लेता है कि समाज की मानसिक सरंचनाओं से पूर्ण मुक्ति का अर्थ है संपूर्ण निष्क्रियता और यही संपूर्ण निष्क्रियता पूर्ण कर्म है, मुक्कमल ऐक्शन है जो टकरावों के बीज नहीं बोता और इस तरह पतन की ओर भी नहीं ले जाता।

मैं जो भी कहना चाहता था वो तो मैंने कह दिया, संभवतया अब हम इस पर वार्तालाप कर सकते हैं, या फिर आप इस बाबत अपने सवाल पूछ सकते हैं।

वार्ता २६ जुलाई १९६४

कॉपीराइट सूचना

जे. कृष्णमूर्ति के उद्धरण अंतर्राष्ट्रीय कॉपीराइट नियम के अंतर्गत संरक्षित हैं तथा सर्वाधिकारी की लिखित पूर्वानुमति के बिना किसी भी रूप में पुनः प्रस्तुत नहीं किये जा सकते हैं। सन् १९६८ के पूर्व की कृष्णमूर्ति की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ऑफ अमेरिका, ओह्राय, कैलीफोर्निया का है। सन् १९६८ के बाद की रचनाओं का कॉपीराइट कृष्णमूर्ति फाउंडेशन ट्रस्ट, ब्रॉकवुड पार्क, इंग्लैंड का है।

खंड दो

१. ताज महोत्सव १८-२७ फरवरी २०११

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आगरा में आयोजित कला, संस्कृति से भरे ताज महोत्सव में के.एफ.आई. वाराणसी ने प्रदर्शनी में कृष्णमूर्ति की विभिन्न विषयों पर पुस्तकें व डी.वी.डी. उपलब्ध करायीं। इस दस दिवसीय प्रदर्शनी में देश-विदेश से आये हुए लोगों ने अपनी रुचि के अनुसार पुस्तकें खरीदीं व अन्य जानकारी एकत्र की।

२. दिल्ली विश्वविद्यालय में कृष्णमूर्ति शिक्षा एवं धर्मनिरपेक्ष नैतिकता पर कार्यशाला

कृष्णमूर्ति, शिक्षा और धर्मनिरपेक्ष नैतिकता पर हो रहे दो दिवसीय (मार्च ९-१०) कार्यशाला का आयोजन दिल्ली विश्वविद्यालय में किया गया। इस कार्यशाला का उद्घाटन प्रो. विवेक सुनेजा ने किया। विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग में कार्यरत अध्यापक और अध्यापिकाओं ने शिक्षा और नैतिकता से जुड़े सवालों पर गंभीरता से विचार किया। एक सत्र में विशेषकर बौद्ध दर्शन के आलोक में इन्हीं प्रश्नों पर चर्चा हुई। सबसे उत्साहजनक बात रही बड़ी संख्या में छात्राओं और छात्रों द्वारा पूरे जोश के साथ इसमें भाग लेना और ज़मीनी हकीकत से जुड़े सवालों के प्रति सजग रह कर खुलेपन के साथ चर्चा करना।

इस दो दिवसीय कार्यशाला में दिल्ली विश्वविद्यालय, ऋषिवैली स्कूल, राजघाट बीसेंट स्कूल और बसंता कॉलेज वाराणसी के.एफ.आई. के छात्रों-छात्राओं व कुछ अध्यापक-अध्यापिकाओं ने अपने अनुभव व संस्मरण सुनाये।

३. गुजरात हिंदी गैदरिंग २४-२७ मार्च २०११

इस वर्ष कृष्णमूर्ति गुजरात कमेटी ने तीथल, वलसाड में हिंदी गैदरिंग का आयोजन किया है। गैदरिंग का विषय रहेगा ''जीवन संबंधों में है'' जिस पर प्रो. पी कृष्णा व श्री किशोर खैरनार जी द्वारा सहभागियों के साथ संवाद होगा। इस हिंदी गैदरिंग में कुल ६ वार्ताएं होंगी जिनके विषय का वर्णन निम्न प्रकार है :

२४ मार्च :

१. कृष्णमूर्ति के जीवन व उनके कार्य का परिचय

२. गैदरिंग के मुख्य विषय का परिचय

२५ मार्च :

१. 'रिश्तों के दर्पण में स्वयं के बारे में जानना'

२. 'मतभेद की प्रकृति को समझना तथा इसका रिश्तों पर प्रभाव'

२६ मार्च :

१. 'शिक्षक व विद्यार्थी का परस्पर संबंध'

२. 'तुलना तथा स्पर्धा की समस्याएं तथा इनका रिश्तों पर प्रभाव'

२७ मार्च :

१. 'पारिवारिक संबंधों का निर्वाह'

२. 'नागरिक का समाज के साथ संबंध'

सहभागी होने के लिये सभी स्टडी सेंटरों में फार्म उपलब्ध हैं, आप चाहें तो फार्म की फोटोकापी कराकर भी भेज सकते हैं। फार्म जमा करने की अंतिम तारीख १५ मार्च है।

४. कृष्णमूर्ति हिंदी रिट्रीट २०-२४ अप्रैल २०११

कृष्णमूर्ति हिंदी रिट्रीट का आयोजन अप्रैल माह में किया जा रहा है। इस चार दिवसीय अध्ययनशाला का विषय 'चुनावरहित सजगता और स्वतंत्रता' है। इच्छुक सहभागी अपना रजिस्ट्रेशन जल्द करवा लें। सहभागिता शुल्क रु. १६०० है। आप इस संदर्भ में के.एफ.आई, राजघाट, वाराणसी से संपर्क कर सकते हैं।

५. नई पुस्तकें: -

सीखने की कला - द्विभाषी संस्करण

विध्वंस के कगार पर खड़े इस संसार में संपूर्ण जीवन की गहरी समझ में से उपजी एक पूर्णतया भिन्न प्रकार की नैतिकता और आचरण की बेहद आवश्यकता है, ऐसा कृष्णमूर्ति ज़ोर देकर कहते हैं। तमाम तरह की राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक क्रांतियां इस दिशा में विफल रही हैं। लेकिन एक मौलिक क्रांति है जो हमारे मानस के आमूलचूल परिवर्तन से सीधे संबंध रखती है और इसकी शुरुआत होती है सम्यक् शिक्षा और मनुष्य के समग्र विकास से।

जे० कृष्णमूर्ति की महत्त्वपूर्ण पुस्तक 'लाईफ अहेड' अभिभावकों, शिक्षकों और छात्रों को संबोधित वार्ताओं का संकलन है। इसी पुस्तक की प्रस्तावना का द्विभाषी संस्करण 'सीखने की कला' के रूप में प्रस्तुत है। सम्यक् शिक्षा और समग्र विकास में 'सीखना' सर्वोपरि महत्त्व की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में न तो तुलनात्मक मूल्यांकन का कोई स्थान होता है और न ही किसी प्रकार की कोई 'सत्ता' का। यहां शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों एक साथ मिलकर सीखते हैं और जीवन को समग्रता में समझते हैं।

पृष्ठ संख्या : 57 मूल्य : 45.00

प्रकाशक : के.एफ.आई. राजघाट, वाराणसी

ये रिश्ते क्या हैं?

पुस्तक जे. कृष्णमूर्ति द्वारा विभिन्न स्थानों पर दी गयी वार्ताओं का एवं उनके द्वारा रचित लेखों का प्रासंगिक संकलन है।

हमारा हर उस शख़्स से, उस शै से क्या रिश्ता है जो हमारे जीवन में है? क्या हमारे जीवन में ये द्वंद्व कभी न खत्म होंगे? तमाम तरह की स्मृतियों व अपेक्षाओं पर आधारित ये संबंध कितने आधे-अधूरे से हैं, और वर्तमान की जीवंतता से प्रायः अपरिचित, छवियों व पूर्वाग्रहों में कैद इन्हीं रिश्तों में हम सुकून तलाशते हैं, आखिर सही रिश्ता, सम्यक् संबंध है क्या?

कृष्णमूर्ति कहते हैं, 'जब आप खुद को ही नहीं जानते तो आप प्रेम व संबंध को कैसे जान पाएंगे'?

'हम रुढ़ियों के दास हैं। भले ही हम खुद को आधुनिक समझ बैठें, मान लें कि बहुत स्वतंत्र हो गये हैं, परंतु गहरे में देखें तो हैं हम रुढ़िवादी ही। इसमें कोई संशय नहीं है क्योंकि छवि-रचना के खेल को आपने स्वीकार किया है और परस्पर संबंध को इन्हीं के आधार पर स्थापित करते हैं। यह बात उतनी ही पुरातन है जितनी कि ये पहाड़ियां। यह हमारी एक रीति बन गई है। हम इसे अपनाते हैं, इसी में जीते हैं, और इसी से एक दूसरे को यातनाएं देते हैं। तो क्या इस रीति को रोका जा सकता है?'

पृष्ठ संख्या : 183 मूल्य : 145.00
प्रकाशक : राजपाल एंड संज़, नई दिल्ली

'भाब्बार कॉथा'

This Matter of Culture/Think on These Things का बंगला भाषा में श्री अंजन पहाड़ी द्वारा प्रथम अनुवाद 'भाब्बार कॉथा' पाठकों के लिए प्रस्तुत है। ३४० पृष्ठों वाली यह पुस्तक गत २७ जनवरी २०११ को कोलकाता बुक फेअर में पहली बार जनमानस के समक्ष लायी गयी जहां इस पुस्तक की सारी प्रकाशित प्रतियां बिकीं और अनेक पाठकों ने जिन्होंने कृष्णमूर्ति को पहले कभी नहीं पढ़ा था कृष्णमूर्ति की अन्य पुस्तकों के बंगला अनुवाद की आवश्यकता पर ज़ोर दिया।

पृष्ठ संख्या : 344 मूल्य : 50.00
प्रकाशक : सलमोली पब्लिकेशन्स

हिन्दी में उपलब्ध कृष्णमूर्ति साहित्य

कृष्णमूर्ति की परिचयात्मक पुस्तकें :

१.	ज्ञात से मुक्ति	रु. ३०.००
२.	ध्यान	रु. ४०.००
३.	हिंसा से परे	रु. ८०.००
४.	गरुड़ की उड़ान	रु. ७०.००
५.	प्रथम और अन्तिम मुक्ति (सजिल्द द्विभाषी संस्करण)	रु. ५००.००
६.	प्रथम और अन्तिम मुक्ति (पेपरबैक)	रु. १७५.००
७.	आमूल क्रान्ति की आवश्यकता	रु. १००.००
८.	अन्तिम वार्ताएँ	रु. ७०.००
९.	आपको अपने जीवन में क्या करना है	रु. १७५.००

शिक्षा संबंधी पुस्तकें :

१.	शिक्षा एवं जीवन का तात्पर्य	रु. ६०.००
२.	शिक्षा संवाद	रु. ८०.००
३.	स्कूलों के नाम पत्र	रु. ६०.००
४.	स्कूलों को पत्र भाग-२	रु. ४०.००
५.	शिक्षा क्या है?	रु. १७५.००
६.	संस्कृति का प्रश्न	रु. ५०.००
७.	सीखने की कला (Bilingual)	रु. ४५.००

कृष्णमूर्ति का स्वयं का लेखन :

१.	जीवन भाष्य-I	रु. ७०.००
२.	जीवन भाष्य-II	रु. १२०.००
३.	जीवन भाष्य-III	रु. १४०.००

थीम बुक्स :

१.	जीवन और मृत्यु	रु. १२५.००
२.	ईश्वर क्या है?	रु. १२५.००
३.	ध्यान	रु. १२५.००
४.	सोच क्या है?	रु. १२५.००
५.	ये रिश्ते क्या हैं	रु. १४५.००

पुस्तिकाएं :

१.	मृत्यु और उसके बाद	रु. ४०.००
२.	वाशिंगटन वार्ताएँ	रु. २५.००
३.	आन्तरिक प्रस्फुटन	रु. १०.००
४.	जीवन की पुस्तक	रु. १०.००
५.	प्रेम : स्वयं से एक संलाप	रु. १०.००
६.	सत्य एक पथहीन भूमि है	रु. १०.००
७.	स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व एवं अनुशासन	रु. १०.००
८.	ध्यान में मन	रु. १०.००
९.	परम्परा जिसने अपनी आत्मा खो दी है	रु. ५.००

हिन्दी डी.वी.डी.

''बुनियादी बदलाव : एक चुनौती''	रु. १००.००

कृष्णमूर्ति स्टडी सेंटर

कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी-221001

ईमेलः kcentrevns@gmail.com फोनः 0542-2441289, 2440453

'कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया' के लिए प्रकाशक, मुद्रक प्रो. पी. कृष्णा द्वारा सत्तनाम प्रिंटिंग प्रेस, एस-१/२०८ के-१, नयी बस्ती, पांडेयपुर, वाराणसी २२१ ००२ से मुद्रित एवं कृष्णमूर्ति फाउंडेशन इंडिया, राजघाट फोर्ट, वाराणसी २२१ ००१ (उ.प्र.) से प्रकाशित।

संपादक : विजय छाबड़ा